दिगम्बर परंपरामें आचार्य सिद्धसेन

कैलाशचन्द्र शास्त्री

आचार्य सिद्धसेन जैन परम्पराके प्रख्यात तार्किक और ग्रन्थकार थे। जैन परम्पराकी दोनों ही शाखाओंमें उन्हें समान आदर प्राप्त था। किन्तु आज उनकी कृतियोंका जो समादर श्वेताम्बर परम्परामें है वैसा दिगम्बर परम्परामें नहीं है। किन्तु पूर्वकालमें ऐसी बात नहीं थी। यही दिखाना इस लेखका मुख्य उद्देश्य है।

नामोल्लेख

उपलब्ध दि० जैन साहित्यमें सिद्धसेनका सर्वप्रथम नामोल्लेख अकलंकदेवके तत्त्वार्थवार्तिकमें पाया जाता है। तत्त्वार्थसूत्रके प्रथम अध्यायके तेरहवें सूत्रमें आगत 'इति' शब्दके अनेक अर्थोंका प्रतिपादन करते हुए अकलंकदेवने एक अर्थ 'शब्दप्रादुर्भाव' किया है। और उसके उदाहरणमें श्रीदत्त और सिद्धसेनका नामोल्लेख किया है। यथा—

'क्वचिच्छब्दप्रादुर्भावे वर्तते-इति, श्रीदत्तमिति सिद्धसेनमिति' (त० वा० पृ० ५७)

श्रीदत्त दिगम्बर परम्परामें एक महान् आचार्य हो गये हैं। आचार्य विद्यानन्दने अपने तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकमें उन्हे त्रेसठ वादियोंका जेता तथा 'जल्पनिर्णय' नामक ग्रन्थका कर्ता बतलाया है। अतः उनके पश्चात् निर्दिष्ट सिद्धसेन प्रसिद्ध सिद्धसेन ही होना चाहिये। अकलंकदेवकी कृतियों पर उनके प्रभाव-की चर्चा हम आगे करेंगे। अतः अकलंकदेवने श्रीदत्तके साथ उन्हींका स्मरण किया, यही विशेष संभव प्रतीत होता है।

गुणस्मरण

विक्रमकी नवीं शताब्दीमें दिगम्बर परम्परामें दो जिनसेनाचार्य हुए हैं। उनमेंसे एक हरिवंशपुराणके

१ द्विप्रकारं जगौ जल्पं तत्त्वप्रातिभगोचरम्। त्रिषष्टेर्वादिनां जेता श्रीदत्तो जल्पनिर्णये॥ ४५॥—त० श्लो० वा० पृ० २८०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचयिता थे और दूसरे थे महापुराण(आदिपुराण)के रचयिता। दोनोंने ही अपने अपने पुराणोंके प्रारम्भमें अपने पूर्वज आचार्योंका स्मरण करते हुए सिद्धसेनका भी स्मरण किया है।

हरिवंशपुराणमें स्मृत आचार्योंकी नामावली इस प्रकार है : समन्तभद्र, सिद्धसेन, देवनन्दि, वज्रसूरि, महासेन, रविषेण, जटासिंहनन्दि, शान्त, विशेषवादि, कुमारसेनगुरु और वीरसेनगुरु और जिनसेन स्वामी।

आदिपुराणमें स्मृत आचार्योंकी तालिका इस प्रकार है : सिद्धसेन, समन्तभद्र, श्रीदत्त, प्रभाचन्द्र, शिवकोटि, जटाचार्य, काणभिक्षु, देव (देवनन्दि), भट्टाकलंक, श्रीपाल, पात्रकेसरी, वादिसिंह, वीरसेन, जयसेन, कवि परमेश्वर।

प्रायः सभी स्मृत आचार्य दिगम्बर परम्पराके हैं। उन्हींमें सर्वोपरि सिद्धसेनको भी स्थान दिया गया है जो विशेष स्वरूपसे उल्लेखनीय है।

हरिवंश पुराणकारने सिद्धसेनका स्मरण इस प्रकार किया है—

जगत्प्रसिद्धबोधस्य वृषभस्येव निस्तुषाः।
बोधयन्ति सतां बुद्धिं सिद्धसेनस्य सूक्तयः॥ ३०॥

जिनका ज्ञान जगतमें सर्वत्र प्रसिद्ध है उन सिद्धसेनकी निर्मल सूक्तियां ऋषभदेव जिनेन्द्रकी सूक्तियोंके समान सज्जनोंकी बुद्धिको प्रबुद्ध करती हैं।

इसके पूर्व समन्तभद्रके वचनोंको वीर भगवानके वचनतुल्य बतलाया है। और फिर सिद्धसेनकी सूक्तियोंको भगवान ऋषभदेवके तुल्य बतलाकर उनके प्रति एक तरहसे समन्तभद्रसे भी अधिक आदर व्यक्त किया है। यहां सूक्तियोंसे सिद्धसेनकी किसी रचनाविशेषकी ओर संकेत प्रतीत नहीं होता। किन्तु महापुराणमें तो अवश्य ही उनके सन्मतिसूत्रके प्रति संकेत किया गया है। यथा—

प्रवादिकरियूथानां केसरी नयकेसरः।
सिद्धसेनकविर्जीयाद्विकल्पनखराङ्कुरः॥ ४२॥

सिद्धसेन कवि जयवन्त हों, जो प्रवादीरूपी हाथियोंके झुण्डके लिये सिंहके समान है तथा नय जिसके केसर (गर्दन परके बाल) हैं और विकल्प पैने नाखून हैं।

सिद्धसेनकृत सन्मतिसूत्रमें प्रधान रूपमें यद्यपि अनेकान्तकी चर्चा है, तथापि प्रथम काण्डमें अनेकान्तवादकी देन नय और सप्तभंगीकी मुख्य चर्चा है। तथा दूसरे काण्डमें दर्शन और ज्ञानकी चर्चा है, जो अनेकान्तकी ही अंगभूत है। इस चर्चामें आगमका अवलम्बन होते हुए भी तर्ककी प्रधानता है। और तर्कवादमें विकल्पजालकी मुख्यता होती है जिसमें फसांकर प्रतिवादीको परास्त किया जाता है। अतः जहां सन्मतिसूत्रके प्रथमकाण्ड सिद्धसेनरूपी सिंहके नयकेसरत्वका परिचायक है, वहां दूसरा काण्ड उनके विकल्परूपी पैने नखोंका अनुभव कराता है। दर्शन और ज्ञानका केवलीमें अभेद सिद्ध करनेके लिये जो तर्क उपस्थित किये गये हैं, प्रतिपक्षी भी उनका लोहा माने विना नहीं रह सकते। अतः जिनसेनाचार्यने अवश्य ही सन्मतिसूत्रका अध्ययन करके सिद्धसेनरूपी सिंहके उस रूपका साक्षात्परिचय प्राप्त किया था, जिसका चित्रण उन्होंने अपने महापुराणके संस्मरणमें किया है।

सन्मतिसूत्रकी आगमप्रमाणरूपमें मान्यता

यह जिनसेन वीरसेनस्वामीके शिष्य थे और वीरसेनस्वामीने अपनी धवला और जयधवला टीकामें नयोंका निरूपण करते हुए सिद्धसेनके सन्मतिसूत्रकी गाथाओंको सादर प्रमाण रूपसे उद्धृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया है। दोनों टीकाओं[1]में निक्षेपोंमें नयोंकी योजना करते हुए वीरसेन स्वामीने अपने कथनका सन्मति-सूत्रके साथ अविरोध बतलाते हुए सन्मतिसूत्रको आगमप्रमाणके रूपमें मान्य किया है। किन्तु सन्मति सूत्र-के दुसरे काण्डमें केवलज्ञान और केवलदर्शनका अभेद स्थापित किया गया है और यह अभेदवाद जहां क्रमवादी श्वेताम्बर परम्पराके विरुद्ध पड़ता है वहां युगपद्वादी दिगम्बर परम्पराके भी विरुद्ध पड़ता है। अतः सिद्धसेनके इस अभेदवादी मतको जैसे श्वेताम्बर परम्पराने मान्य नहीं किया और जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणने अपने विशेषावश्यक भाष्यमें उसकी कठोर आलोचना की, वैसे ही सन्मतिसूत्रको आगमप्रमाणके रूपमें मान्य करके भी वीरसेनस्वामीने उसमें प्रतिपादित अभेदवादको मान्य नहीं किया और मीठे शब्दोंमें उसकी चर्चा[2] करके उसे अमान्य कर दिया।

यह एक उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है कि एक ग्रन्थको प्रमाणकोटिमें रखकर भी उसके अमुक मतको अमान्य कर दिया जाता है अथवा अमुक मतके अमान्य होने पर भी उस मतके प्रतिपादक ग्रन्थको सर्वथा अमान्य नहीं किया जाता और उसके रचयिताका सादर संस्मरण किया जाता है।

अकलंकदेव पर प्रभाव

आचार्य अकलंकदेव आचार्य समन्तभद्रकी वाणीरूपी गंगा और सिद्धसेनकी वाणीरूपी यमुनाके संगमस्थल हैं। दोनों महान आचार्योंकी वाग्धाराएं उनमें सम्मिलित होकर एकाकार हो गई हैं। समन्तभद्रके 'आप्तमीमांसा' पर तो अकलंकदेवने अष्टशती नामक भाष्य रचा है, किन्तु सिद्धसेनके द्वारा तार्किक पद्धतिसे स्थापित तथ्योंको भी अपनी अन्य रचनाओंमें स्वीकार किया है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

नयोंकी पुरानी परम्परा सप्तनयवादकी है। दिगम्बर तथा श्वेताम्बर परंपराएं इस विषयमें एकमत हैं। किन्तु सिद्धसेन दिवाकर नैगमको पृथक् नय नहीं मानते। शायद इसीसे वह षड्नयवादी कहे जाते हैं। अकलंकदेवने अपने तत्त्वार्थवार्तिक[3]में चतुर्थ अध्यायके अन्तिम सूत्रके व्याख्यानके अन्तर्गत नयसप्तभंगीका विवेचन करते हुए द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नयोंको संग्रहाद्यात्मक बतलाया है तथा छ ही नयोंका आश्रय लेकर सप्तभंगीका विवेचन किया है। तथा लघीयस्त्रयमें यद्यपि नैगमनयको लिया है तथापि कारिका ६७की स्वोपज्ञ वृत्ति में सन्मतिकी गाथा १–३की शब्दशः संस्कृत छायाको अपनाया है। यथा—

तित्थयर वयण संग्रहविसेसपत्थारमूलवागरणी।
दव्वट्ठिओ य पज्जवणओ य सेसा विपत्थासिं ॥—सन्मति।

तथा. तीर्थकरवचनसंग्रहविशेषप्रस्तारमूलव्याकरिणौ द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकौ निश्चेतव्यौ।

—ल० स्वो०

सिद्धसेनने सन्मतिमें एक नई स्थापना और भी की है। और वह है पर्याय और गुणमें अभेद की। अर्थात् पर्यायसे गुण भिन्न नहीं है। यह चर्चा तीसरे काण्डमें गाथा ८से आरम्भ होती है। इस चर्चाका उपसंहार करते हुए आचार्य सिद्धसेनने उसका प्रयोजन शिष्योंकी बुद्धिका विकास बतलाया है, क्योंकि जिनोपदेशमें न तो एकान्तसे भेदभाव मान्य है और न एकान्तसे अभेदवाद, अतः उक्त चर्चाके लिये अवकाश नहीं है। (सम्मति ३–२५, २६)

---

१. कसायपाहुड, भा० १, पृ० २६१। षट्खण्डागम पु० १, पृ० १५। पु० ९ पृ० २४४। पु० १३, पृ० ३५४।

२. कसायपाहुड, भा १, पृ० ३५७। ३ पृ० २६१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकलंकदेवने भी तत्त्वार्थवार्तिकमें पांचवे अध्यायके 'गुणपर्यायवद् द्रव्यम् ॥ ३७ ॥' सूत्रके व्याख्यानमें उक्त चर्चाको उठाकर उसका समाधान तीन प्रकारसे किया है। प्रथम तो आगमप्रमाण देकर गुणकी सत्ता सिद्धकी है, फिर 'गुण एव पर्यायाः' समास करके गुणको पर्यायसे अभिन्न बतलाया है। यही आचार्य सिद्धसेनकी मान्यता है। इस परसे यह शंकाकी गई है कि यदि गुण ही पर्याय हैं तो केवल गुणवत् द्रव्य या पर्यायवत् द्रव्य कहना चाहिये था—'गुणपर्याय वद् द्रव्य' क्यों कहा? तो उत्तर दिया गया कि जैनेतर मतमें गुणोंको द्रव्यसे भिन्न माना गया है। अतः उसकी निवृत्तिके लिये दोनोंका ग्रहण करके यह बतलाया है कि द्रव्यके परिवर्तनको पर्याय कहते है। उसीके भेद गुण हैं, गुण भिन्नजातीय नहीं हैं। इस प्रकार इस चर्चामें भी अकलंकदेवने सिद्धसेनके मतको मान्य किया है। अतः अकलंकदेव पर सिद्धसेनका प्रभाव स्पष्ट है।

आचार्य विद्यानन्द और सिद्धसेन

आचार्य विद्यानन्द एक तरहसे अकलंकके अनुयायी और टीकाकार थे। उन्होंने समन्तभद्रके आप्तमीमांसा और उस पर अकलंकदेवके अष्टशती भाष्यको आवेष्टित करके अष्टसहस्री नामक महान् ग्रन्थकी रचनाकी थी। तथा जैसे न्यायदर्शनके सूत्रों पर उद्योतकरकी न्यायवार्तिकसे प्रभावित होकर अकलंकदेवने तत्त्वार्थसूत्र पर तत्त्वार्थवार्तिककी रचनाकी थी, वैसे ही विद्यानन्दने मीमांसक कुमारिलके मीमांसा श्लोकवार्तिकसे प्रभावित होकर तत्त्वार्थसूत्र पर तत्त्वार्थश्लोकवार्तिककी रचना की थी। इस तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें प्रथम अध्यायके अन्तिम सूत्र पर नयोंका सुन्दर संक्षिप्त विवेचन है। इस विवेचनके अन्तमें ग्रन्थकारने लिखा[1] है कि विस्तारसे नयोंका स्वरूप जाननेके लिये नयचक्रको देखना चाहिये; यह नयचक्र संभवतया मल्लवादीकृत नयचक्र होना चाहिये; क्योंकि उपलब्ध देवसेनकृत लघुनयचक्र और माइल्ल धवलकृत नयचक्र प्रथम तो संक्षिप्त ही हैं, विस्तृत नहीं है, इनसे तो विद्यानन्दने ही नयोंका स्वरूप अधिक स्पष्ट लिखा है; दूसरे, उक्त दोनों ही ग्रन्थकार विद्यानन्दके पीछे हुए हैं। अतः विद्यानन्द उनकी कृतियोंको देखनेका उल्लेख नहीं कर सकते थे, अस्तु। इस नयचर्चामें विद्यानन्दने सिद्धसेनके षड्नयवादको स्वीकार नहीं किया, बल्कि उसका विरोध किया है। उनका कहना है कि नैगमनयका अन्तर्भाव न तो संग्रहमें होता है, न व्यवहारमें और न ऋजुसूत्रादिकमें। अतः परीक्षकोंको 'संग्रहआदि छै नय ही हैं' ऐसा नहीं कहना चाहिये।

संग्रहे व्यवहारे वा नान्तर्भावः समीक्ष्यते।
नैगमस्य तयोरेकवस्त्वंशग्रवणत्वतः ॥ २४ ॥
नर्जुसूत्रादिषु प्रोक्तहेतवो वेति षण्नयाः।
संग्रहादय एवेह न वाच्याः प्रपरीक्षकैः ॥ २५ ॥

—त० श्लो० वा० ६,२६९।

यहां 'प्रपरीक्षक' शब्द संभवतया सिद्धसेनके लिये ही आया है, क्योंकि परीक्षाके आधार पर उन्होंने ही षड्नयवादकी स्थापना की थी। परीक्षकके साथ प्रकर्षत्वके सूचक 'प्र' उपसर्गसे भी इस बातकी पुष्टि होती है, क्योंकि सिद्धसेन साधारण परीक्षक नहीं थे।

इसी तरह विद्यानन्दने पांचवे अध्यायके 'गुणपर्यायवद् द्रव्यम्' इस सूत्रकी व्याख्यामें गुण और पर्यायमें अभेद मानकर भी सिद्धसेनानुगामी अकलंकका अनुकरण नहीं किया, किन्तु गुण और

१. संक्षेपेण नयास्तावद् व्याख्यातास्तत्र सूचिताः। तद्विशेषाः प्रपञ्चेन संचिन्त्या नयचक्रतः ॥१०२॥ त० श्लो० वा० पृ० २७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याय दोनोंके ग्रहणके आधार पर एक ऐसा तथ्य फलित किया जो अनेकान्तदर्शनके इतिहासमें उल्लेखनीय है। उन्होंने लिखा है—

गुणवद्द्रव्यमित्युक्तं सहानेकान्तसिद्धये।
तथा पर्यायवद्द्रव्यं क्रमानेकान्तवित्तये ॥ २ ॥—त० श्लो० वा० पृ० ४३८

सहानेकान्तकी सिद्धिके लिये 'गुणवद् द्रव्यम्' कहा है। तथा क्रमानेकान्तके बोधके लिये 'पर्यायवद् द्रव्यम्' कहा है।

अर्थात् अनेकान्तके दो प्रकार हैं: सहानेकान्त और क्रमानेकान्त। परस्परमें विरोधी प्रतीत होनेवाले धर्मोंका एक वस्तुमें स्वीकार अनेकान्त है। उनमेंसे कुछ धर्म तो ऐसे होते हैं जो वस्तुमें साथ साथ रह सकते है जैसे अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व; किन्तु कुछ धर्म ऐसे होते हैं जो कालक्रमसे एक वस्तुमें रहते हैं, जैसे सर्वज्ञता और असर्वज्ञता, मुक्तत्व और संसारित्व। गुण सहभावी होते हैं और पर्याय क्रमभावी होती हैं अतः एकसे सहानेकान्त प्रतिफलित होता है तो दूसरेसे क्रमानेकान्त।

इस तरह विद्यानन्दने सिद्धसेनके मतोंको अमान्य या प्रकारान्तरसे मान्य करते हुए भी तत्त्वार्थ-श्लोकवार्तिकके प्रारम्भमें ही हेतुवाद और आगमवादकी चर्चाके प्रसंगसे समन्तभद्रके आप्तमीमांसाके 'वक्तर्यनाप्ते' इत्यादि कारिकाके पश्चात् ही प्रमाणरूपसे सिद्धसेनके सन्मतिसे भी 'जो हेदुवाद-पक्खम्मि' आदि गाथा उद्धृत करके सिद्धसेनके प्रति भी अपना आदरभाव व्यक्त किया है, यह स्पष्ट है।

टीकाकार सुमतिदेव

विद्यानन्दसे पहले और संभवतया अकलंकदेवसे भी पूर्व दिगम्बर परम्परामें सुमतिदेव नामके आचार्य हो गये हैं। श्रवणबेलगोलाकी मल्लिषेणप्रशस्तिमें कुन्दकुन्द, सिंहनन्दि, वक्रग्रीव, वज्रनन्दि और पात्रकेसरीके बाद सुमतिदेव की स्तुति की गई है और उनके बाद कुमारसेन, वर्द्धदेव और अकलंकदेवकी। इससे सुमतिदेव प्राचीन आचार्य मालूम होते हैं।

पार्श्वनाथचरित(वि० सं० १०८२)के कर्ता वादिराजने प्राचीन ग्रन्थकारोंका स्मरण करते हुए लिखा है—

नमः सन्मतये तस्मै भवकूपनिपातिनाम्।
सन्मतिर्विवृता येन सुखधामप्रवेशिनी ॥ २२ ॥

अर्थात् उस सन्मतिको नमस्कार हो जिनने भवकूपमें पड़े हुए लोगोंके लिये सुखधाममें पहुँचानेवाली सन्मतिको विवृत किया अर्थात् सन्मतिकी वृत्ति या टीका रची।

यह सन्मति सिद्धसेनकृत ही होना चाहिये। 'नमः सन्मतये' में 'सन्मति' नाम सुमतिके लिये ही आया है। दोनोंका शब्दार्थ एक ही है। किन्तु सन्मतिके साथ सन्मतिका शब्दालंकार होनेसे काव्य-साहित्यमें सुमतिके स्थानमें सन्मतिका प्रयोग किया गया है।

जैन ग्रन्थोंमें तो सुमतिदेवका कोई उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु बौद्ध दार्शनिक शान्तरक्षितने अपने तत्त्वसंग्रहके स्याद्वादपरीक्षा और बहिरर्थपरीक्षा नामक प्रकरणोंमें सुमतिनामक दिगम्बराचार्यकी आलोचना की है। यह सुमति सन्मति टीकाके कर्ता ही होने चाहिये। संभवतया उसीमें चर्चित मतकी समीक्षा शान्तरक्षितने की है। वैसे मल्लिषेणप्रशस्तिमें उनके सुमतिसप्तक नामक ग्रन्थका भी उल्लेख है। यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमतिदेवममुं स्तुत येन वः सुमतिसप्तकमाप्ततया कृतम्।
परिहृतापथतत्त्वपथार्थिनां सुमतिकोटि विवर्तिभवार्तिहृत्॥

अस्तु, जो कुछ हो, किन्तु इतना निश्चित है कि दिगम्बराचार्य सुमतिने, जो सम्भवतया विक्रमकी सातवीं शताब्दीसे बादके विद्वान नहीं थे, सिद्धसेनके सन्मति पर टीका रची थी। इस तरह सिद्धसेनका सन्मति-तर्क सातवीं शताब्दीसे नौवीं शताब्दी तक दिगम्बर परम्परामें आगमिक ग्रन्थके रूपमें मान्य रहा। संभवतया सुमतिदेवकी टीकाके लुप्त हो जाने पर और श्वेताम्बराचार्य अभयदेवकी टीकाके निर्माणके पश्चात् दिगम्बर परम्परामें उसकी मान्यता लुप्त हो गई और उसे श्वेताम्बर परम्पराका ही ग्रन्थ माना जाने लगा। किन्तु वह एक ऐसा अनमोल ग्रन्थ है कि जैनदर्शनके अभ्यासीको उसका पारायण करना ही चाहिये। सन्मतितर्कके सिवाय, जो प्राकृतगाथाबद्ध है, संस्कृतकी कुछ बत्तीसियां भी सिद्धसेनकृत हैं। उनमेंसे एक बत्तीसीका एक चरण पूज्यपाद देवने सर्वार्थसिद्धि टीकाके सप्तम अध्यायके १३वें सूत्रकी व्याख्यामें उद्धृत है—

'वियोजयति चासुभिर्न च वधेन संयुज्यते'

अकलंकदेवने भी अपने तत्त्वार्थवार्तिकमें उक्त सूत्रकी व्याख्यामें उसे उद्धृत किया है। और वीरसेनस्वामीने तो जयधवला टीका(भा० १, पृ० १०८)में उक्त चरणसे सम्बद्ध पूरा श्लोक ही उद्धृत किया है। तथा अकलंक देवने तत्त्वार्थवार्तिकमें आठवें अध्यायके प्रथम सूत्रकी व्याख्यामें भी एक पद्य उद्धृत किया है जो प्रथम द्वात्रिंशतिकाका तीसवां पद्य है। इस तरह सिद्धसेनकी कुछ द्वात्रिंशतिका भी छठी शताब्दीसे ही दिगम्बर परम्परामें मान्य रहीं हैं। इन्हीं द्वात्रिंशतिकाओंमें न्यायावतार भी है और सिद्धसेनकृत माना जानेके कारण उसे उसके नामके अनुरूप जैन परम्परामें न्यायका प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। किन्तु उसमें अनेक विप्रतिपत्तियां हैं, और वे अभी तक निर्मूल नहीं हुई हैं। अतः तत्सम्बन्धी विवादको न उठाकर इतना ही लिखना पर्याप्त समझते हैं कि उसकी दिगम्बर परम्परामें कोई मान्यता नहीं मिलती।

इस तरह दिगम्बर परम्परामें आचार्य सिद्धसेन अपनी प्रख्यात दार्शनिक कृति सन्मति सूत्र या सन्मतितर्कके द्वारा विशेष रूपसे समादृत हुए हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org